वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 357
ISBN 978-93-82071-35-8

सरल संस्कृत शिक्षा

(संज्ञा प्रकरण एवं स्वरसंधि समन्वित)

कातंत्र व्याकरण के आधार से

–लेखिका –

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	1 जनवरी 2013	12/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

संस्कृत भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान हेतु यह ''संस्कृत सरल शिक्षा'' नामक लघु पुस्तिका प्रवेशिका के विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप–हस्तिनापुर के अन्तर्गत ''गणिनी ज्ञानमती पत्राचार परीक्षा केन्द्र ''संचालित किया जा रहा है, उसमें प्रवेशिका कोर्स के तीनों खण्डों में व्याकरण भी एक विषय है। उसे लेने वाले विद्यार्थी इस छोटी सी पुस्तक के माध्यम से संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इसमें प्रथम वर्ष के कोर्स वाले विद्यार्थियों के लिए सातों विभक्तियाँ और 'जिन' शब्द के रूप दिए हैं। प्रारंभिकरूप में कर्ता और क्रिया की पहचान बताई है पुनः कातंत्र व्याकरण के आधार से संज्ञा प्रकरण एवं स्वर संधि तक विषय प्रस्तुत किया है।

उन्होंने जहाँ षट्खण्डागम और नियमसार जैसे महान ग्रंथों की संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं, वहीं अष्टसहस्री, समयसार जैसे दुरूह ग्रंथों की क्लिष्ट संस्कृत टीकाओं का हिन्दी अनुवाद किया है। इस प्रकार ३०० ग्रंथों का लेखन करके पूज्य माताजी ने जैन साहित्य भंडार को समृद्ध किया है।

जम्बूद्वीप–हस्तिनापुर तीर्थ पर संचालित हो रहे दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला का यह नूतन पुष्प बच्चों के लिए संस्कृत भाषा का प्रारंभिक ज्ञान कराने के उद्देश्य से प्रकाशित किया जा रहा है।

इस लघु पुस्तिका का अध्ययन करके आप सभी संस्कृत भाषा सीखने का प्रारंभीकरण करें, यही इसके प्रकाशन की सार्थकता है।

गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती दिगम्बर जैन पत्राचार परीक्षा केन्द्र के विषय में आवश्यक जानकारी

ज्ञानपिपासु महानुभावों! आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि वर्तमान बीसवी-इक्कीसवीं शताब्दी की सर्व प्राचीन दीक्षित एवं ज्ञान के क्षेत्र में जिन्हें जैनधर्म का जीवन्त इन्साइक्लोपीडिया कहा जा सकता है, ऐसी परमपूज्य, 60 वर्षीय दीक्षित जीवन की महातपस्विनी साध्वीयुगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी नाम से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर संस्थान द्वारा ''गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती दिगम्बर जैन पत्राचार परीक्षा केन्द्र'' का शुभारंभ वर्ष-2012 से किया गया है। इस परीक्षा केन्द्र की स्थापना का मुख्य उद्देश्य जैन श्रावक-श्राविकाओं को धर्म के ज्ञान से अभिसिंचित करना एवं उन्हें समाज में लब्ध प्रतिष्ठित करने हेतु विशेष डिग्री के माध्यम से सम्मानित करना है। इस परीक्षा केन्द्र के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के डिग्री कोर्स का शुभारंभ किया गया है, जिसे 12 वर्ष से अधिक उम्र के श्रावक-श्राविकाएँ ज्ञानाराधना के लिए ज्वाइन कर सकते हैं। आशा है आप सभी इस परीक्षा कोर्स में अभिरुचि के साथ भाग लेकर जैनधर्म के ''सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, साहित्य व विधिविधान'' से संदर्भित ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

अवश्य पढ़ने योग्य नियमावली

कोर्स से संबंधित सामान्य जानकारी-

(1) परीक्षा केन्द्र द्वारा यह धार्मिक परीक्षा प्रणाली ''पत्राचार कोर्स'' के रूप में प्रारंभ की गई है।

(2) किसी भी कोर्स में भाग लेने हेतु प्रवेश 'निःशुल्क' रखा गया है।

(3) परीक्षा में भाग लेने के लिए उम्र सीमा 12 वर्ष से अधिक रखी गई है। जैनधर्म के ज्ञान का अर्जन करने के इच्छुक प्रत्येक श्रावक-श्राविकाएँ इसमें भाग ले सकते हैं।

(4) समस्त परीक्षाएँ पत्राचार के माध्यम से घर बैठे दी जा सकती हैं।

(5) परीक्षा में प्रवेश पाने हेतु वर्ष के दिसम्बर माह के अंतिम सप्ताह तक प्रवेश फार्म भरकर परीक्षार्थी को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के पते पर आवश्यक रूप से पहुँचाना होगा।

(6) प्रवेश फार्म भरने के उपरांत आपको संस्थान द्वारा रोल नम्बर आदि के साथ विशेष प्रवेश-पत्र भेजा जायेगा, जिसे परीक्षा तक संभालकर रखना होगा।

(7) परीक्षा के प्रश्न-पत्र जून के अंतिम सप्ताह में संस्थान द्वारा डाक से आपके घर पुँहचाये जायेंगे।

(8) प्रश्नपत्र में उत्तर लिखने के उपरांत 15 जुलाई तक आपको उत्तर-पुस्तिका जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के कार्यालय पर रजिस्टर्ड डाक द्वारा पहुँचाना अनिवार्य रहेगा।

(9) उत्तर पुस्तिका की जाँच जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के विद्वानों द्वारा की जायेगी और प्रमाण-पत्र के माध्यम से आपको परिणाम फल पहुँचाया जायेगा।

(10) यह परीक्षा केन्द्र जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के नाम पर खोला गया है, जिसमें प्रवेश लेने वाले परीक्षार्थियों को पूज्य माताजी का विशेष मंगल आशीर्वाद प्राप्त रहेगा। इस परीक्षा केन्द्र का संचालन प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के विशेष मार्गदर्शन एवं जम्बूद्वीप धर्मपीठ के पीठाधीश कर्मयोगी स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी के निर्देशन में होगा।

परीक्षा कोर्स एवं प्रवेश फार्म मंगाने हेतु संपर्क करें-

जीवन प्रकाश जैन, हस्तिनापुर (संयोजक)

मो.-09411025124

सरल संस्कृत शिक्षा

(संज्ञा प्रकरण एवं स्वरसंधि समन्वित)

कातंत्र व्याकरण के आधार से

सरस्वति! नमस्तुभ्यं, वरदे! कामरूपिणि!
विद्यारंभं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा।।१।।

प्रथमः पाठः

विभक्तियों के नाम व अर्थ

विभक्तियाँ	कारक	अर्थ
प्रथमा	कर्त्ता	कर्त्ता, ने
द्वितीया	कर्म	को
तृतीया	करण	ने, से, के द्वारा, कारण से
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिए, के अर्थ, के वास्ते
पंचमी	अपादान	से, कारण
षष्ठी	सम्बन्ध	का, की, के
सप्तमी	अधिकरण	मे, पर
सम्बोधन	सम्बोधन	हे, भो, रे, अरे, अये

अकारान्त पुल्लिङ्ग 'जिन' शब्द के रूप

			प्रथमा
एकवचन	जिनः	=	जिन-जिनेन्द्र भगवान
द्विवचन	जिनौ	=	दो जिन भगवान
बहुवचन	जिनाः	=	सब जिनभगवान
			द्वितीया
एकवचन	जिनम्	=	जिनभगवान को
द्विवचन	जिनौ	=	दो जिनभगवान को
बहुवचन	जिनान्	=	सब जिनभगवान को
			तृतीया
एकवचन	जिनेन	=	जिनभगवान ने, से, के द्वारा
द्विवचन	जिनाभ्याम्	=	दो जिन भगवान ने, से , के द्वारा
बहुवचन	जिनैः	=	सब जिन भगवान ने, से, के द्वारा
			चतुर्थी
एकवचन	जिनाय	=	जिनभगवान के लिए, अर्थ, वास्ते
द्विवचन	जिनाभ्याम्	=	दो जिनभगवान के लिए, अर्थ, वास्ते
बहुवचन	जिनेभ्यः	=	सब जिनभगवान के लिए, अर्थ, वास्ते
			पंचमी
एकवचन	जिनात्	=	जिनभगवान से
द्विवचन	जिनाभ्याम्	=	दो जिनभगवान से
बहुवचन	जिनेभ्यः	=	सब जिनभगवान से
			षष्ठी
एकवचन	जिनस्य	=	जिनभगवान का, की, के
द्विवचन	जिनयोः	=	दो जिनभगवान का, की, के
बहुवचन	जिनानाम्	=	सब जिनभगवान का, की, के
			सप्तमी
एकवचन	जिने	=	जिनभगवान मे, जिनभगवान पर,
द्विवचन	जिनयोः	=	दो जिनभगवान में, पर
बहुवचन	जिनेषु	=	सब जिनभगवान में, पर

सम्बोधन

एकवचन	हे जिन !	=	हे जिनभगवान, भो, अरे
द्विवचन	हे जिनौ !	=	हे दो जिनभगवान, भो, अरे
बहुवचन	हे जिनाः !	=	हे सब जिनभगवान, अरे

ऐसे ही वीर, धर्म और बालक शब्द के भी रूप बनाने चाहिए।

धर्म शब्द की समस्त विभक्तियों का एक पद्य में प्रदर्शन

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।

एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
सः = वह,	तौ = वे दोनों,	ते=वे सब
भवान् = आप,	भवन्तौ = आप दोनों,	भवन्तः = आप सब,
त्वम् = तू,	युवाम् = तुम दोनों,	यूयम् = तुम सब,
अहम् = मैं,	आवाम् = हम दोनों,	वयम् = हम सब,

नम् (नमस्कार या प्रणाम) धातु का लट्लकार

सः	नमति	वह नमस्कार करता है।
तौ	नमतः	वे दोनों नमस्कार करते हैं।
ते	नमन्ति	वे सब नमस्कार करते हैं।
त्वम्	नमसि	तू नमस्कार करता है।
युवाम्	नमथः	तुम दोनों नमस्कार करते हो।
यूयम्	नमथ	तुम सब नमस्कार करते हो।
अहम्	नमामि	मैं नमस्कार करता हूँ।
आवाम्	नमावः	हम दोनों नमस्कार करते हैं।
वयम्	नमामः	हम सब नमस्कार करते हैं।

जिनः शतेन्द्र वंद्योऽस्ति, जिनं भक्त्या श्रयाम्यहम्।
जिनेन दीयते सौख्यं, जिनाय कोटिशो नमः।।१।।
जिनाद् धर्मोऽभवज्जैनो, जिनस्य नाम क्षेमकृत्।
जिने भक्तिः स्थिरा मे स्यात्, जिन! त्वं रक्ष रक्ष माम्।।२।।

अथ संज्ञा प्रकरण

सिद्धो वर्णसमाम्नायः।।१।।

अर्थ — वर्णों का समुदाय अनादिकाल से सिद्ध है।।१।।

इन वर्णों के समूह को आज तक न किसी ने बनाया है और न कोई नष्ट ही कर सकते हैं, ये वर्ण अनादि निधन हैं। उनको जानना चाहिए। वे कौन हैं ? अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह। ये सैंतालीस वर्ण कहलाते हैं।

तत्र चतुर्दशादौ [१]स्वराः।।२।।

अर्थ — इनमें आदि के चौदह अक्षर स्वर कहलाते हैं।।२।।

इन वर्णों के समुदायों में आदि के जो चौदह अक्षर हैं, वे स्वर संज्ञक हैं। वे कौन-कौन हैं ? अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। ये चौदह स्वर हैं।

दश समानाः।।३।।

अर्थ — दश समान संज्ञक हैं।।३।।

इन स्वरों में आदि के जो दश वर्ण हैं उनकी "समान" यह संज्ञा है। वे कौन हैं? अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ।

तेषां द्वौ द्वावन्योऽन्यस्य सवर्णौ।।४।।

अर्थ — इनमें दो-दो वर्ण आपस में सवर्णी हैं।।४।।

इस समान संज्ञक स्वरों में दो-दो वर्ण आपस में सवर्ण संज्ञक हैं। अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ।

सूत्र में "तेषां" शब्द का ग्रहण क्यों किया है ? दो ह्रस्व वर्ण एवं दो दीर्घ वर्ण भी आपस में सवर्ण संज्ञक हैं इस बात को स्पष्ट करने के लिए सूत्र में "तेषां" पद सार्थक है। अर्थात् चार प्रकार से सवर्णता मानी गई है।

क्रमेण वैपरीत्येन, लघूनां लघुभिः सह।
गुरूणां गुरुभिः सार्धं, चतुर्धेति सवर्णता।।१।।

श्लोकार्थ — क्रम से अर्थात् ह्रस्व ह्रस्व का, दीर्घ दीर्घ का, दीर्घ ह्रस्व का और ह्रस्व दीर्घ का यह चार भेद हैं।

ऋकारऌकारौ च ।।५।।

अर्थ — ऋकार और ऌकार भी परस्पर सवर्ण हैं।।५।।

---

१. स्वयं राजन्त इति स्वराः।।

ऋकार और ऌकार भी परस्पर में सवर्ण संज्ञक हैं, जैसे-ऋ ऌ।

पूर्वो ह्रस्वः[1]।।६।।

अर्थ—पूर्व के वर्ण ह्रस्व हैं।।६।।

इन सवर्ण संज्ञक स्वरों में पूर्व-पूर्व पाँच स्वर ह्रस्व संज्ञक हैं। अ इ उ ऋ ऌ।

परो दीर्घः[2]।।७।।

अर्थ—अंत के स्वर दीर्घ संज्ञक हैं।।७।।

इन सवर्ण संज्ञक दश स्वरों में अंत-अंत के पाँच स्वर दीर्घ संज्ञक हैं। आ ई ऊ ॠ ॡ।

स्वरोऽवर्णवर्जो नामि।।८।।

अर्थ—अवर्ण को छोड़कर शेष स्वर नामि संज्ञक हैं।।८।।

अवर्ण को छोड़कर शेष बारह स्वरों की 'नामि' यह संज्ञा है। इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। वर्ण के ग्रहण करने से सवर्ण का अर्थात् दोनों स्वरों का ग्रहण हो जाता है और 'कार' शब्द के ग्रहण करने से केवल एक स्वर का ही ग्रहण होता है। जैसे अवर्ण कहने से अ आ दोनों ही आ गये एवं अकार कहने से मात्र 'अ' शब्द ही आता है। यह नियम सर्वत्र व्याकरण में समझना चाहिए।

एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि।।९।।

अर्थ—एकार आदि स्वर संध्यक्षर कहलाते हैं।।९।।

एकार आदि स्वर, संध्यक्षर संज्ञक होते हैं। वे कौन हैं? ए ऐ ओ औ।

नित्यं सन्ध्यक्षराणि दीर्घाणि।।१०।।

अर्थ—ये संध्यक्षर हमेशा ही दीर्घ रहते हैं।।१०।।

संध्यक्षर नित्य ही दीर्घ होते हैं।

कादीनि व्यञ्जनानि[3]।।११।।

अर्थ—'क' आदि वर्ण व्यंजन कहलाते हैं।।११।।

ककार से लेकर हकार पर्यंत अक्षर व्यंजन संज्ञक हैं। ये ३३ हैं।

क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न । प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह।

ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च।।१२।।

१. ह्रस्यते एकमात्रतया उच्चार्यते इति ह्रस्वः। २. दृणाति विदारयति द्विमात्रतया मुखबिलमिति दीर्घः। २.व्यज्यन्ते अकारादिभिः पृथक्क्रियन्ते इति व्यञ्जनानि अथवा विगतः अञ्जन स्वरलेपो येभ्य इति व्यञ्जनानि।

अर्थ—उनमें पाँच-पाँच के पाँच वर्ग होते हैं।।१२।।

ये ककारादि से 'म' पर्यंत पाँच-पाँच वर्ण मिलकर पाँच ही वर्ग होते हैं। क ख ग घ ङ ये कवर्ग संज्ञक हैं। कवर्ग कहने से ये पाँचों ही अक्षर आ जाते हैं। उसी प्रकार से चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग होते हैं।

वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः[1]।।१३।।

अर्थ—इन वर्गों में प्रथम द्वितीय अक्षर और श ष स अक्षर अघोष कहलाते हैं।।१३।।

जैसे—कख, चछ, टठ, तथ, पफ, श ष स। ये तेरह अक्षर।

घोषवन्तोऽन्ये।।१४।।

अर्थ—बचे हुए अक्षर घोषवान हैं।।१४।।

अघोष अक्षर से बचे हुए शेष तृतीय, चतुर्थ, पंचम अक्षर और य र ल व ह ये घोषवान संज्ञक हैं। जैसे—ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म, य र ल व, ह। ये २० अक्षर घोष हैं।

अनुनासिका ङञणनमाः।।१५।।

अर्थ—ङ, ञ, ण, न, म ये अनुनासिक संज्ञक हैं।।१५।।

अनु—पश्चात् नासिका स्थान से जिनका उच्चारण होता है वे अनुनासिक कहलाते हैं। अर्थात् इन ङ, ञ, ण, न और म के उच्चारण में कुछ-कुछ ध्वनि नाक से भी निकलती है इसलिए ये अनुनासिक कहलाते हैं।

अन्तःस्था यरलवाः।।१६।।

अर्थ—य र ल व अक्षर अंतस्थ संज्ञक हैं।।१६।।

जो ओष्ठ आदि स्थानों के अंत में रहते हैं उन्हें अंतस्थ कहते हैं।

ऊष्माणः शषसहाः।।१७।।

अर्थ—श, ष, स, ह अक्षर ऊष्म संज्ञक हैं।।१७।।

उष्ण धर्म को उत्पन्न करने वालों को 'ऊष्म' कहते हैं अर्थात् इनके उच्चारण काल में मुख से कुछ उष्ण वायु निकलती है।

अः इति विसर्जनीयः।।१८।।

अर्थ—"अः" यह विसर्ग कहलाता है।।१८।।

जिसके बिना उच्चारण न किया जा सके वह उच्चारण के लिए होता है। यहाँ

१. घोषो ध्वनिर्न विद्यते येषां ते अघोषाः।

विसर्ग को बतलाने के लिए 'अकार' शब्द उच्चारण के लिए है। जैसे कः आदि में 'क' शब्द उच्चारण के लिए रहता है। यह विसर्ग सभी स्वर और व्यंजन में लगाया जाता है।

×क इति जिह्वामूलीयः[१]।।१९।।

अर्थ— '×क' यह वर्ण जिह्वामूलीय कहलाता है।।१९।।

यहां ककार उच्चारण के लिए है मतलब वज्राकृति वर्ण जिह्वामूलीय संज्ञक होता है। '×क'[२]

***प इत्युपध्मानीयः[३]।।२०।।**

अर्थ—**'*प' यह उपध्मानीय संज्ञक है।।२०।।**

यहाँ 'प' शब्द उच्चारण के लिए है मतलब गजकुंभाकृति[४] वर्ण को उपध्मानीय संज्ञा है

अं इत्यनुस्वारः।।२१।।

अर्थ— 'अं' यह वर्ण अनुस्वार संज्ञक है।।२१।।

यहाँ भी अकार मात्र उच्चारण के लिए है। मतलब बिंदु मात्र वर्ण अनुस्वार संज्ञक है ऐसा समझना चाहिए।

लोकोपचाराद्ग्रहणसिद्धिः।।२२।।

अर्थ— लोकोपचार से शब्द ग्रहण की सिद्धि होती है।।२२।।

लोक के उपचार को व्यवहार कहते हैं। इसलिए यहाँ नहीं कहे गये भी ग्रहण–शब्दों की सिद्धि–प्रवृत्ति समझ लेना चाहिए।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—जैसे तुम्हारे द्वारा गाँव को जाया जाता है ऐसा वाक्य बनाने पर 'तुम गाँव को जाते हो' ऐसा अर्थ समझना चाहिए।

भावार्थ—जिसका दूसरा नाम है वाक्य या वृद्ध ज्ञानी जन का व्यवहार उससे तथा प्रसिद्ध पद के संयोग से निश्चय होता है। 'सहकारे पिको विरौति', यहाँ पिक–कोयल के संयोग से सहकार आम्र का निश्चय होता है।

।।संज्ञा प्रकरण समाप्त हुआ।।

१. जिह्वामूले भवो जिह्वामूलीयः। २. क के पीछे अर्ध चन्द्राकार जैसे, क ⌣ करोति। ३. उप समीपे धमायते शब्दायते इति उपध्मानीयः। ४. प से पहले गज कुम्भाकृति जैसे क)(पठति।

अथ स्वर संधि

संधि किसे कहते हैं ?

पूर्व और उत्तर वर्णों का—दो पदों या अनेक पदों का व्यवधान—अंतराल के बिना परस्पर में संश्लेष हो जाना संधि कहलाती है। जैसे—

तव+अभ्युदयः, कान्ता+आगता, दधि+इदम्, नदी+ईहते आदि दो–दो पद हैं।[१]

अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत् ।।२३।।

अर्थ— क्रम का उल्लंघन न करते हुए विश्लेषण करे।।२३।।

मिले हुए वर्णों में से क्रम का उल्लंघन न करते हुए पृथक्–पृथक् विश्लेषण करना चाहिए।[२] जैसे–

तव् + अ + अभ्युदयः। कान्त् + आ + आगता। दध् + इ + इदम्। नद् + ई + ईहते। वस् उ + उभयोः वध् ऊ + ऊढा, पित् ऋ + ऋषभः, मात् ऋ + ऋकारेण, क् ॠ + ॠकारः, क् ॠ + ॠकारेण इत्यादि।

अब सूत्र लगता है—

समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् ।।२४।।

अर्थ— सवर्ण के आने पर समान सवर्ण दीर्घ हो जाता है और पर का लोप हो जाता है।।२४।।

समान संज्ञा वाले वर्ण, आगे सवर्ण–उसी समान वर्ण के आने पर दीर्घ हो जाते हैं और आगे वाले स्वर का लोप हो जाता है। सभी जगह ह्रस्व तो दीर्घ हो जाता है और स्वभाव से ह्रस्व का अभाव होने पर (अर्थात् दीर्घ होने पर) आगे के स्वर का लोप हो जाता है।

व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत् ।।२५।।

अर्थ— स्वर रहित व्यंजन अगले स्वर को प्राप्त कर लेते हैं।।२५।।

तो—तवाभ्युदयः, कांतागता, दधीदम्, नदीहते, वसूभयोः, वधूढा, पितृषभः, मातृकारेण, कृकारः, कृकारेण। इस प्रकार संधि हो जाने से ये पद सिद्ध हो गये।

आगे 'होतृ + ऋकारः' यह विग्रह है–

इसमें 'समानः सवर्णे दीर्घी भवति परश्च लोपम्' इस सूत्र से एक बार दीर्घ होकर "होतॄकारः" बन गया है। पुनः–

ऋति ऋतोर्लोपो वा।।२६।।

१. उन दोनों में रूपांतर होकर जो परिवर्तन होता है उसे संधि कार्य कहते हैं। २. इसका नाम संधि–विच्छेद है।

अर्थ—ऋकार के आने पर ऋकार का लोप विकल्प से होता है।।२६।।

ऋकार के आने पर पूर्व के ऋकार को दीर्घ विकल्प से होता है और अगले ऋकार का लोप होता ही होता है। जैसे—

होतृ + ऋकारः= होतृकारः भी बना है। देव + इन्द्रः, कान्ता + इयम् ये शब्द स्थित हैं—

अवर्ण इवर्णे ए।।२७।।

अर्थ—इवर्ण के आने पर अवर्ण को 'ए' होकर अगले स्वर का लोप हो जाता है।।२७।।

यहाँ सूत्र में वर्ण के ग्रहण करने से सवर्ण का ग्रहण हुआ समझना चाहिए। अतः-

देव् अ + इन्द्रः = देव् ए + न्द्रः= देवेन्द्रः।

कान्त् आ + इयं = कान्त् ए + यं = कान्तेयम्। हल + ईषा, लांगल + ईषा।

हललाङ्गलयोरीषायामस्य लोपः।।२८।।

अर्थ—ईषा के आने पर हल और लाङ्गल के 'अकार' का लोप हो जाता है।।२८।।

हल् + ईषा= हलीषा, लाङ्गल + ईषा= लाङ्गलीषा। मनस् + ईषा।

मनसः सस्य च ।।२९।।

अर्थ—ईषा के आने पर 'मनस्' के 'अस्' का लोप हो जाता है।।२९।।

मन् ईषा= मनीषा। गंध + उदकम्, माला + ऊढा।

उवर्णे ओ।।३०।।

अर्थ—उवर्ण के आने पर अवर्ण को 'ओ' हो जाता है।।३०।।

अर्थात् आगे उवर्ण के आने पर पूर्व के अवर्ण को 'ओ' होकर अगले उवर्ण का लोप हो जाता है। जैसे-गंध् ओ दकम् = गंधोदकम्, माल् ओ ढा = मालोढा। तव + ऋकारः, सा + ऋकारेण।

ऋवर्णे अर्।।३१।।

अर्थ—ऋवर्ण के परे अवर्ण को अर् हो जाता है।।३१।।

अवर्ण से परे ऋवर्ण के आने पर 'अवर्ण' को 'अर्' हो जाता है और ऋवर्ण का लोप हो जाता है तब-

तव् अर् कारः = 'तवर्कारः' बन जाता है पुनः यह अर्थ रकार यदि व्यञ्जन से पूर्व में रहता है तो ऊपर चला जाता है और यदि व्यञ्जन से आगे रहता है तो नीचे लग जाता है।

रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा।।३२।।

अर्थ—शिट् के न होने पर रेफ से सहित अक्षर को विकल्प से द्वित्व हो जाता है।।३२।।

शिट् किसे कहते हैं ?

शिडिति शादयः।।३३।।

अर्थ—श, ष, स, ह इन चार वर्णों की 'शिट्' संज्ञा है।।३३।।

तवर्क्कारः, स् अर् क्कारेण= सक्कारिण बन गया।

ऋण + ऋणम् , प + ऋणम् इत्यादि

सूत्र लगा 'ऋवर्णे अर्' इस सूत्र से ऋण् अर् + णम् आदि बन गये। पुनः ३४वां सूत्र लगा।

ऋणप्रवसनवत्सतरकम्बलदशानामृणेऽरो दीर्घः।।३४।।

अर्थ—ऋण से परे ऋण और प्र, वसन, वत्सतर, कम्बल और दश इनके अर् को दीर्घ हो जाता है।।३४।।

तब—ऋण् आर् णम् = ऋणार्णम्, प्र् आर् + णम् = प्रार्णम्, वसन् आर् + णम् = वसनार्णम् , वत्सतरार्णम् , कम्बलार्णम् , दशार्णम् । शीत + ऋतः, दुःख + ऋतः।

इसमें समास का प्रकरण है तो इनका विग्रह- शीतेन ऋतः। शीत टा स्थित है समास के प्रकरण में "तत्स्थालोप्या विभक्तयः" सूत्र से 'टा' विभक्ति का लोप होकर 'शीत+ ऋतः' स्थित है। "ऋवर्णे अर्" इस सूत्र से शीत् अर् + तः बन गया। पुनः सूत्र लगा-

ऋते च तृतीयासमासे।।३५।।

अर्थ—तृतीया समास के प्रकरण में ऋवर्ण के आने पर अर् को दीर्घ हो जाता है।।३५।।

तब शीतार्तः, दुःखार्तः बना।

यहाँ 'तृतीया समास में' ऐसा क्यों कहा ?

कर्मधारय समास में अर् को दीर्घ नहीं होता है जैसे-परमश्चासौ ऋतश्च। परम + ऋतः = परमर्तः बन गया। तव + ऌकारः, सा + ऌकारेण।

ऌवर्णे अल् ।।३६।।

अर्थ—ऌवर्ण के आने पर अवर्ण को अल् हो जाता है।।३६।।

और अगले ऌवर्ण का लोप हो जाता है।

तव् अल् + कारः = तवल्कारः, स् अल् + कारेण= सल्कारेण बन गया। तव + एषा, सा+ऐन्द्री।

एकारे ऐ ऐकारे च।।३७।।

अर्थ — आगे ए, ऐ के आने पर अवर्ण को 'ऐ' हो जाता है।।३७।।

और अगले स्वर का लोप हो जाता है।

तव् ऐ + षा= तवैषा, स् ऐ + न्द्री = सैन्द्री। स्व + ईरम्, स्व+ईरिणी, स्व+ईरी।

इसमें 'अवर्ण इवर्णे ए' सूत्र लग रहा था किन्तु इसको बाधित करके आगे सूत्र लगता है —

स्वस्येरेरिणीरिषु।।३८।।

अर्थ — ईर, ईरिणी और ईरी के आने पर 'स्व' के 'अकार' को 'ऐ' हो जाता है।।३८।।

अगले ईवर्ण का लोप हो जाता है।

स्व् ऐ+ रम् = स्वैरम् , स्व् ऐ + रिणी = स्वैरिणी, स्व् ऐ + री= स्वैरी। अद्य + एव, इह + एव।

इसमें भी 'एकारे ऐ ऐकारे च' सूत्र से 'अद्यैव' 'इहैव' बनने वाला था किन्तु अगले सूत्र से विकल्प हो गया।

एवे चानियोगे नित्यम् ।।३९।।

अर्थ — अनियोग अर्थ में आगे 'एव' शब्द के आने पर नियम से अवर्ण का लोप हो जाता है।।३९।।

तब — अद्य् + एव = अद्येव, इह + एव = इहेव बन गया। इसका अर्थ आज्ञा एवं प्रेरणा नहीं है जैसे कि कोई किसी को कह रहा है कि 'अद्येव गच्छ' आज ही जाना चाहिए। जावो या न जावो जबर्दस्ती नहीं है किन्तु पूर्ववत् सन्धि में नियोग अर्थ-आज्ञा या प्रेरणा अर्थ विशेष होता है जैसे ''अद्यैव गच्छ'' आज ही जावो इत्यादि। तव + ओदनम्, सा + औपगवी।

ओकारे औ औकारे च।।४०।।

अर्थ — ओ औ के आने पर अवर्ण को 'औ' हो जाता है।।४०।।

और पीछे ओ औ वर्ण का लोप हो जाता है।

तव् औ + दनम् = तवौदनम्। स् औ + पगवी = सौपगवी बन गया। 'ओकारे औ औकारे च' इस सूत्र में 'च' शब्द है इसका यह अर्थ होता है कि उपसर्ग से परे ए और ओ है आदि में जिसके ऐसी धातुओं के आने पर उपसर्ग के 'अ' का लोप हो जाता है।

प्र् अ + एलयति = प्रेलयति, पर् आ + ओखति= परोखति।

इण् और एध् धातु से एति और एधते क्रियायें बनती हैं यद्यपि इन दोनों क्रियाओं में आदि में 'एकार' है फिर भी 'इणेधत्योर्न' इस नियम के अनुसार इन धातुओं के आने पर पूर्व के उपसर्ग के अकार का लोप नहीं होता है। तो पूर्व के 'एकारे ऐ ऐकारे च' सूत्र से

अवर्ण को 'ऐ' होकर अगले स्वर का लोप हो जाता है।

उप + एति, उप् ए + ति = उपैति, उप + एधते उप् ऐ + धते = उपैधते।

जो नामवाची शब्द से धातु बनकर क्रिया बने हैं उनमें विकल्प है अर्थात् 'अ' का लोप भी होता है और पूर्ववत् संधि हो जाती है जैसे —

उप + एलकीयति, उप् + एलकीयति=उपेलकीयति अथवा उप् ऐ + लकीयति= उपैलकीयति। प्र + ओषधीयति प्र् + ओषधीयति= प्रोषधीयति, प्र् औ + षधीयति= प्रौषधीयति बन जाता है। अद्य + ओम् , सा + ओम्।

ओमि च ।।४१।।

अर्थ — ओम् शब्द के आने पर नित्य ही अवर्ण का लोप हो जाता है।।४१।।

अद्य् अ ओम्, अद्य् + ओम् = अद्योम्, स् आ + ओम्, स् + ओम् = सोम् बन गया।

बिम्ब + ओष्ठः, स्थूल + ओतुः

ओष्ठौत्वोः समासे वा।।४२।।

अर्थ — समास के विषय में ओष्ठ और ओतु शब्द के आने पर विकल्प से अवर्ण का लोप होता है।।४२।।

बिम्ब के समान है ओष्ठ जिसका ऐसा —

बिम्ब् अ + ओष्ठः 'अ' का लोप होने पर बिम्बोष्ठः और संधि होने पर बिम्बौष्ठः। स्थूल् अ + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः। जब समास का प्रकरण नहीं है तब अवर्ण का लोप नहीं होगा। जैसे-हे पुत्र ! ओष्ठं पश्य, पुत्र + ओष्ठं = पुत्रौष्ठं बन गया। अक्ष + ऊहिनी।

अक्षस्य ऊहिन्याम् ।।४३।।

अर्थ — ऊहिनी-सेना शब्द के आने पर अक्ष के 'अ' को औ होकर पर का लोप हो जाता है।।४३।।

अर्थात् 'उवर्णे ओ' से 'ओ' होना चाहिए था किन्तु इस स्वतंत्र सूत्र से औ हो गया तो-

अक्ष् औ + हिनी = अक्षौहिनी बना पुनः 'रषृवर्णेभ्यो' इत्यादि सूत्र से 'न' को 'ण' होकर अक्षौहिणी हो गया।

प्र से परे ऊढः और ऊढ़िः शब्द के आने पर 'अ' को 'औ' होकर 'ऊ' का लोप हो जाता है।

प्र् औ + ढः = प्रौढः, प्र् औ + ढिः= प्रौढिः।

प्र से परे एषः और एष्यः के आने पर 'अ' को 'ऐ' होकर पर का लोप हो गया।

प्र् अ + एषः, प्र् ऐ + षः = प्रैषः, प्र् ऐ +ष्यः= प्रैष्यः बना। दधि + अत्र, नदी + एषा।

इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः।।४४।।

अर्थ— इवर्ण से परे-आगे असवर्ण वर्ण के आने पर इवर्ण को 'य्' होता है और पर का लोप नहीं होता है।।४४।।

दध् इ + अत्र, दध् य् + अत्र 'व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्' इस सूत्र से स्वर रहित व्यंजन अगले स्वर में मिल जाते हैं तो दध्यत्र बन जाता है। नद् य् + एषा=नद्येषा। मधु + अत्र, वधू + आसनम् ।

वमुवर्णः।।४५।।

अर्थ— उवर्ण को 'व्' हो जाता है।।४५।।

यदि आगे उवर्ण न होकर असवर्ण स्वर हो तो उवर्ण को 'व्' होकर अगले स्वर का लोप नहीं होता है जैसे-

मध् उ + अत्र, मध् व् + अत्र= मध्वत्र, वध् ऊ + आसनम् = वध्वासनम् ।

पितृ + अर्थः, मातृ + अर्थः।

रमृवर्णः।।४६।।

अर्थ— ऋवर्ण को 'र्' हो जाता है।।४६।।

असवर्ण स्वर के आने पर -पित् ऋ + अर्थः, पित् र् + अर्थः = पित्रर्थः, मात् र् + अर्थः= मात्रर्थः। ऌ + अनुबंधः, ऌ + आकृतिः।

लम्ऌवर्णः।।४७।।

अर्थ— असवर्ण स्वर के आने पर ऌवर्ण को 'ल्' हो जाता है।।४७।।

एवं पर का लोप नहीं होता है।

ल् + अनुबंधः = लनुबंधः, ल् + आकृतिः= लाकृतिः। ने + अनम्, चे + अनम्।

ए अय् ।।४८।।

अर्थ— आगे स्वर के आने पर एकार को अय् हो जाता है।।४८।।

एवं पर का लोप नहीं होता है।

न् ए + अनम्, न् अ य् + अनम् = नयनम्, च् अ य् + अनम् = चयनम् । नै + अकः, चै + अकः।

ऐ आय् ।।४९।।

अर्थ— ऐ को 'आय्' हो जाता है।।४९।।

और पर का लोप नहीं होता है।

न् ऐ + अकः, न् आय् + अकः = नायकः, च् आय् + अकः = चायकः।

लो + अनम्, पो + अनम् ।

ओ अव् ।।५०।।

अर्थ— ओ को अव् हो जाता है।।५०।।

और आगे का लोप नहीं होता है।

ल् ओ + अनम् , ल् अव् + अनम् =लवनम्, प् ओ + अनम्, प् अव् + अनम् = पवनम् ।

लौ + अकः, पौ + अकः।

औ आव् ।।५१।।

अर्थ— स्वर के आने पर औ को आव् हो जाता है।।५१।।

एवं पर का लोप नहीं होता है।

ल् औ + अकः ल् आव् + अकः = लावकः, प् आव् + अकः = पावकः। गो + अजिनम् ।

गोर इति वा प्रकृतिः।।५२।।

अर्थ— अकार के आने पर 'गो' शब्द की विकल्प से संधि नहीं भी होती है।।५२।।

गो अजिनम् वा। आगे के ५७वें 'एदोत्परः पदांते लोपमकारः' सूत्र से 'अकार' का लोप हो जाता तो गोऽजिनम् बना। और अगले ५३वें सूत्र से गो के ओ को अव आदेश होकर 'समानः सवर्णे दीर्घी' इत्यादि से दीर्घ होकर ग् अव + अजिनम् = गवाजिनम् हो गया।

गो + अश्वौ, गो + ईहा, गो + उष्ट्रौ, गो + एलकौ।

अवः स्वरे।।५३।।

अर्थ— गो शब्द को 'अव' आदेश हो जाता है।।५३।।

स्वर के आने पर विकल्प से। जैसे-एक बार ५२वें सूत्र से प्रकृति ही रहता है तो 'गो अश्वौ' 'एदोत्परः' इत्यादि सूत्र से "अ" का लोप होकर गोश्वौ, और ओ को 'अव' होने से 'गवाश्वौ' बन गया।

वैसे ग् अव + ईहा= 'अवर्ण इवर्णे ए' से गवेहा। 'ओ अव्' सूत्र से ग् अव् + ईहा= गवीहा। ग् अव + उष्ट्रौ 'उवर्णे ओ' से गवोष्ट्रौ एवं 'ओ अव्' से गव् + उष्ट्रौ = गवुष्ट्रौ बना। ग् अव + एलकौ = गवैलकौ, ग् अव् + एलकौ = गवेलकौ बना। गो + अक्ष, गो + इन्द्रः।

अक्षेन्द्रियोर्नित्यम् ।।५४।।

अर्थ— अक्ष और इन्द्र के आने पर नियम से गो के ओ को 'अव' आदेश हो जाता है।।५४।।

ग् अव + अक्षः 'समानः सवर्णे' इत्यादि सूत्र से दीर्घ होकर गवाक्षः, ग् अव + इन्द्रः 'अवर्ण इवर्णे ए' से संधि होकर गव् ए + इन्द्रः = गवेन्द्रः।

ते + आहुः, तस्मै + आसनम्, पटो + इह, असौ + इन्दुः।

पहले इनमें "ए अय्, ऐ आय्, ओ अव्, औ आव्," सूत्रों से संधि कर लीजिए।

तय् + आहुः, तस्माय् + आसनम्, पटव् + इह, असाव् + इंदुः।

अयादीनां यवलोपः पदान्ते न वा लोपे तु प्रकृतिः।।५५।।

अर्थ — पद के अंत में विद्यमान अय् अव् आदि के 'य् व्' का विकल्प से लोप हो जाता है और लोप होने पर संधि नहीं होती है।।५५।।

तय् + आहुः य् का लोप होने पर त आहुः, लोप नहीं होने पर तयाहुः, लोप होने पर तस्मा आसनम्, नहीं होने पर तस्मायासनम्, पट इह, पटविह, असा इन्दुः, असाविंदुः।

नै + ऋ + अदः, रै + उ + अणः, मै + ऋ + उतः, ओ + उ + इंदुः, रिपु + इ + उदयः।

पहले 'ऐ आय्' सूत्र से नाय् + ऋ + अदः, राय् + उ + अणः, माय् + ऋ + उतः, 'ओ अव्' से अव् + उ + इंदुः 'वमुवर्णः' से रिप् व् + इ + उदयः है। पुनः 'रमृवर्णः' और 'वमुवर्णः' से ऋ को र, उ को व् "इवर्णोः यमसवर्णे" इत्यादि से इ को य् हुआ तो नाय् + र् + अदः, राय् + व् + अणः, माय् + र् + उतः, अव् + व् + इंदुः, रिप् व् + य् + उदयः। पुनः सूत्र लगा।

स्वरजौ यवकारावनादिस्थौ लोप्यौ व्यञ्जने।।५६।।

अर्थ — जो स्वर से उत्पन्न हुए 'य् व्' हैं और आदि में स्थित नहीं हैं, आगे व्यंजन के आने पर उन य् व् का लोप हो जाता है।।५६।।

यहाँ विकल्प नहीं है अतः

नाय् + र् + अदः = य् का लोप होकर = नारदः, राय् + व् + अणः य् का लोप होकर = रावणः, माय् + र् + उतः= य् का लोप = मारुतः। अव् + व् + इंदुः = व् का लोप= अविन्दुः, रिप् व् + य् + उदयः = व् का लोप = रिप्युदयः । ये शब्द सिद्ध हो गये।

ते + अत्र, पटो + अत्र।

एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः।।५७।।

अर्थ — पद के अंत में ए ओ के होने पर उससे परे 'अ' का लोप हो जाता है।।५७।।

यहाँ एत् ओत् में जो तकार है उससे ऐसा समझना कि मात्र 'ए ओ' का ही नियम है 'ऐ औ' नहीं लिये जा सकेंगे। कार और त् के लगा देने से मात्र उसी अक्षर का बोध होता है जैसे अकार या अत् शब्द से मात्र 'अ' ही ग्रहण किया जाता है। अतः 'अ' का

लोप होकर तेत्र, पटो + त्र= पटोत्र बना। इस संधि में अ को समझने के लिए खंडाकार चिन्ह भी दिया जाता है। जैसे तेऽत्र, पटोऽत्र।

देवी + गृहम्, पटु + हस्तः, मातृ+ मुखम्, जले + पद्मम्, रै + धृतिः, गो + गतिः, नौ + यानम् ।

न व्यञ्जने स्वराः सन्धेयाः।।५८।।

अर्थ — आगे व्यंजन के आने पर पूर्व के स्वरों की संधि नहीं होती है।।५८।।

अतः उपर्युक्त पद ज्यों के त्यों रह गये तो देवीगृहम्, पटुहस्तः आदि ही रहे। पितृ + यम्, भ्रातृ + यम्, मातृ+यम्।

र ऋतस्तद्धिते ये।।५९।।

अर्थ — आगे तद्धित के यकार के आने पर 'ऋ' को र् हो जाता है।।५९।।

यहाँ व्यंञ्जन के आने पर भी तद्धित के प्रत्यय यकार के लिए एवं 'ऋ' को र् के लिए ही यह संधि हुई है। तो–

पित् र् + यम् = पित्र्यम्, भ्रात् र् + यम् = भ्रात्र्यम्, मात् र् + यम् = मात्र्यम्। गो + यूतिः।

गव्यूतिरध्वमाने।।६०।।

अर्थ — मार्ग के माप अर्थ में गव्यूति शब्द निपात से सिद्ध हो जाता है।।६०।।

गवां + यूतिः,–ग् अव् + यूतिः =गव्यूतिः बन गया।

जिसमें सूत्र का नियम लगकर संधि आदि कार्य न होवें उसे 'निपात' कहते हैं।

।। इस प्रकार से स्वर संधि समाप्त हुई ।।